अनुबोधन, खण्ड 1, अंक 2, जून 2025, पृष्ठ 62–70
ISSN: 3049-4184 (प्रिन्ट) 3108-1185 (ऑनलाइन)
प्रकाशित: 30 जून 2025
जर्नल वेबसाइट: https://anubodhan.org

बौद्ध संघ के धार्मिक पर्वो में भिक्षुणियों की सहभागिता

डॉ० दिनेश कुमार गुप्ता*

महात्मा बुद्ध स्त्रियों को अपने संघ में दीक्षित करने के पक्ष में नहीं थे। उनका मानना था कि स्त्रियों के भिक्षुणीं बनने से संघ में कई समस्याएँ उठ खड़ी हो सकती हैं। स्त्रियों की संघ में उपस्थिति से भिक्षु की अध्यात्मिक साधना में व्यवधान होने की संभावना हो सकती है और भिक्षु संघ के उच्च नैतिक आदर्शों से च्युत हो सकते है। फलतः यह धर्म चिरस्थाई नहीं हो पायेगा और संभवतः पाँच सौ वर्षों तक ही जीवित रह पाऐगा।[1] परंतु महात्मा बुद्ध के प्रिय शिष्य आनन्द ने उनसे बार–बार विनम्र अनुरोध किया कि संघ में स्त्रियों को भी दीक्षित किया जाय और तर्क दिया कि स्त्रियाँ भी अध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के योग्य हैं। उनके नम्र निवेदन के फलस्वरूप महात्मा बुद्ध ने अपने संघ में स्त्रियों को दीक्षित करने की अनुमति तो अवश्य प्रदान की। किन्तु संघ में उनके प्रवेश के लिए एवं प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए अनेक नियम बनाऐ। जिससे बौद्ध संघ का वातावरण संतुलित रह सके।

वास्तव में, भारतीय स्त्री के जीवन में यह प्रथम सुअवसर था। जब उनको गृह जीवन का परित्याग कर, बौद्ध संघ में प्रव्रजित जीवन व्यतीत करने का सर्वप्रथम अवसर मिला। जाहिर है कि गृहस्थ जीवन में भारतीय स्त्रियाँ गृह कार्यों के साथ–साथ, मनोरंजन के प्रकारों को भी स्वंग जोड़ लेती थीं। इससे उनका जीवन विपरीत परिस्थितियों में भी सरस एवं सुखमय हो उठता था। परंतु जब स्त्रियाँ गृह जीवन का परित्याग कर, बौद्ध संघ में भिक्षुणीं के रूप में आयी। तब उनके सम्मुख भी यह प्रश्न व्यापक सा रहा कि वह अपना प्रव्रजित जीवन का पालन करने के साथ–साथ जीवन का आनंद एवं अपना मनोरंजन कैसे करें? अतः भगवान बुद्ध ने उनके प्रव्रजित जीवन एवं मनोदशा को समझते हुए कई प्रकार के धार्मिक पर्वों के विधान बनाये। ताकि भिक्षुणियों को

*सहायक प्राचार्य, विश्वविद्यालय प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार), ई–मेलः dineshguptabgp@gmail.com

साधना का जीवन व्यतीत करने में आसानी हो और उनके जीवन में सरसता एवं मनोरंजन की भी कमी न हो सके। जिससे उनके जीवन में सर्वदा व्यस्तता, तत्परता तथा आनंद इत्यादि बनी रहे।

ज्ञातव्य है कि बौद्ध संघ के संबंध में अनेक अध्ययन पूर्व में किये गये है। परंतु खासकर बौद्ध संघ के धर्मिक पर्वों में भिक्षुणीं की सहभागिता से संबंधित कई महत्वपूर्ण पहलू अनछुए रह गये हैं। इसका प्रमुख कारण यह रहा है कि विद्वानों ने अपने अध्ययन हेतु ऊपर लिखित विषय को पर्याप्त महत्व नहीं दिया है। इसलिए इस विषय का चयन करना, हमारे शोध–पत्र के क्षेत्र का कारण है। अतएव बौद्ध संघ के धार्मिक पर्वों में भिक्षुणियों की सहभागिता से संबंधित बिखरे साहित्यिक सामग्रियों को एकत्रित कर, उसकी निष्पक्ष व्याख्या हो सके। इसी उद्देश्य से हमने यह शोध–पत्र तैयार किया है। इसके अलावे, बौद्ध संघ के धार्मिक पर्वो में उनके विशिष्ठ सहभागिता को देखते हुए भी शोध आलेख प्रासंगिक है। साथ ही साथ उनकी क्या–क्या अभिरूचि संघ के धार्मिक पर्वो में थी ? इस दृष्टिकोण से भी यह शोध आलेख विशेष महत्व रखता है।

गौर करने की बात है कि भगवान बुद्ध के समय के बौद्ध संघ में जो धार्मिक पर्व में भिक्षुणियों की सहभागिता थी। उसकी विस्तृत जानकारी हमे पाली साहित्यों से मिलती हैं। अतः ऊपर वर्णित विषय का अध्ययन करने के लिए विभिन्न पाली ग्रंथों का उपयोग किया गया है। इन्हीं मूल स्रोतों को आधार बनाकर तथा उनसे संबंधित कतिपय द्वितीय स्रोतों का उपयोग प्रस्तुत शोध–पत्र को तैयार करने में किया गया है।

उल्लेखनीय है कि यहाँ सर्वप्रथम 'भिक्षुणीं' शब्द के अर्थ को समझना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। यहाँ 'भिक्षुणीं' शब्द एक विशिष्ट तथा प्रविधिक अर्थ में प्रयुक्त है[2] और उसे उसी अर्थ में समझने की आवश्यकता है। लेकिन उस अर्थ के जानने के पूर्व यह भी जान लेना जरूरी है कि ये शब्द वस्तुतः इस अर्थ का गमक कैसे हो चला ? यहाँ देखा जा सकता है कि इस शब्द के निष्पत्ति 'भिरव' धातु से होती है। 'भिख' का अर्थ होता है भिक्षा मांगना। 'भिख' शब्द में 'रू' प्रत्यय लगने से 'भिक्खु' शब्द बनता है। जिसका अर्थ होता है भिक्षा मांगने वाला। उस 'भिक्खु' शब्द में स्त्री बोधक 'इनी' प्रत्यय लगाकर 'भिक्खुनी' शब्द का निर्माण होता है। दृष्टांत है कि शब्द का स्वरूप

व्याकरण की दृष्टि से है। अतएव, इस दृष्टि से बना हुआ 'भिक्खुनी' शब्द जिस समान अर्थ का घोतक करता है। उसका भाव इस रूप में प्रकट होता है कि "वह नारी जो भिक्षाचार करने वाली है। वह 'भिक्षुणीं' है।[3] यहाँ उल्लेखनीय है कि नारी भिक्षाचार करते हुए मात्र उदर की पूर्ति के लिए यथेष्ट अन्न का संग्रह कर अपना जीवन यापन करती है। इस अर्थ में वह 'भिक्षुणीं' है।[4]

दृष्टिांत है कि तथागत बुद्ध ने समकालीन समाज एवं परिस्थितियों तथा स्त्रियों की मनोदशा को देखते हुए अपने संघ में स्त्रियों के प्रवेश के जो नियम बनाये, उसमें प्रथम नियम, आठ गुरू धर्म शर्त था[5]–

1. भिक्षुणीं श्रमणों का आदर करेगी।

2. अभिक्षु कुल में भिक्षुणियों का वर्षावास नहीं होगा।

3. प्रत्येक परव (पर्व) बौद्ध भिक्षुणियाँ भिक्षु संघ से उपोसघ प्राप्त करेगीं।

4. वर्षावास के अनंतर भिक्षुणियों को दोनों संघों में घट, सुत और परिशंकीत तीनों स्थानों से प्रवारणा करनी होगीं।

5. भिक्षुणियाँ दोनों संघों में पक्षमानता करेगीं।

6. दो वर्षों के अंतर्गत छः धर्मों के शिक्षित होकर भिक्षुणीं को दोनों संघों में उपसन्मदा की प्रार्थना करनी पड़ेगी।

7. भिक्षुणीं को आक्रोश परिभाषण नहीं करना होगा।

8. भिक्षुओं के संबंध में कुछ कहने का मार्ग भिक्षुणियों के लिए विरूद्ध होगा।[6]

गौरतलब है कि महात्मा बुद्ध द्वारा बनाया गया ऊपर वर्णित नियम भिक्षुणियों के लिए जीवन भर पालन करना आवश्यक रूप से अनिवार्य था। जाहिर है कि ऊपर वर्णत शर्त्तों को ग्रहण करने के उपरांत ही कोई स्त्री संघ में प्रवेश कर सकती थी और प्रव्रजित जीवन का निर्वाह कर सकती थी।

फलतः कारूणिक तथागत ने भिक्षुणियों की मनोदशा को गंभीरता से देखते हुए, संघ में अनेक प्रकार के धार्मिक पर्व के नियम बनाये। ताकि भिक्षुणियों को साधना का जीवन व्यतीत करने में आसानी हो और उनके जीवन में सरसता

एवं मनोरंजन की भी कमी न हो सके। जिससे उनके जीवन में सर्वध व्यस्तता एवं तत्परता बनी रहे। हालांकि ये नियम भिक्षुओं के लिए भी थे। इस संबंध में विस्तृत विवरण *संयुक्त निकाय* के विभिन्न प्रसंगों में विस्तारपूर्वक मिलता है,[7] जिसमें प्रकृत प्रसंग में 'उपोसध', 'वर्षावास' तथा 'पवारणा' का विवरण यहाँ प्रसंग वश किया गया है।

ज्ञात हो कि स्थविरवादी बौद्ध परम्परा में 'उपोसध' एक प्रमुख पर्व है। इस पर्व का संघ में धार्मिक, अध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से उच्च स्थान था। इस पर्व के आयोजन से भिक्षुणियों के जीवन में आलौकिक, धार्मिक रस का प्रवाह होता था[8]। जिससे उनके अध्यात्मिक जीवन के मूल्यों का पता चलता था।[9] 'उपोसध' शब्द का अर्थ 'एक साथ बैठना' होता है।[10] हलांकि इसका पारम्परिक अर्थ होता है एक साथ बैठकर धार्मिक कृत्य करना। इसका पुनः प्राविधक अर्थ है एक साथ बैठकर धार्मिक कृत्य के अंतर्गत अपनी प्राकृति परिशुद्धि का ज्ञापन करना। मालूम हो कि महात्मा बुद्ध ने प्रत्येक महिने के प्रत्येक पक्ष की अष्टमी तथा चतुर्दशी को एक स्थान पर बैठकर भिक्षुणियों को धर्मोपदेश देने का उपदेश दिया[11] और उन्होंने कहा कि वे पातिमोक्ख के नियम का समान्यतः अभिवाचन करें। फलतः धीरे–धीरे यह पर्व एक सुव्यवस्थित तथा व्यापक पर्व का रूप लिया तथा संघ जीवन का एक प्रेरणा स्रोत बन गया। शाक्य मुनि बुद्ध ने इसका नाम उपोसध[12] रखा तथा उसने उपोसध को एक धार्मिक कृत्य के रूप में सुचारू रूप से संचालित करने की व्यवस्था प्रदान की।[13]

सर्वप्रथम, उपोसध के कार्य को प्रारंभ करने के पूर्व जो कार्य किये जाते थे। उन्हें पूर्वकरण कहा जाता था। ये मुख्यतः चार थे।[14] प्रथमतः उपोसध गृह की सफाई, द्वितीय उपोसधागर में दीपक प्रज्वलित करना, तृतीय, जल से भरे घट रखना और चतुर्थ भिक्षुणियों के बैठने के लिए आसन बिछाना।[15] पूर्वकरण के पश्चात् पूर्व कृत्य को सम्पन्न करने की बात की गयी है। पूर्व कृत्य संख्या में पाँच है – जिन्हें छन्द, परिशुद्धि, ऋतु का कथन, भिक्षुणियों की गणना तथा धर्मोवाद कहते है।[16] पूर्वकरण एवं पूर्वकृत्य के उपरान्त चार अवलोकनीय बातों का विधान किया जाता था। उनपर सावधानी से विचार करने के बाद उपोसध कार्य प्रारंभ होता था।[17] परम्परा के अनुसार उपोसध तीन प्रकार के होते थे।[18] यथा–संघ उपोसध, गण उपोसध तथा पुदगल उपोसध। उपोसध के दौरान

समस्त भिक्षुणियाँ अपनी परिशुद्धि का ज्ञापन करती थीं[19] कि वे विगत पन्द्रह दिनों में कोई भी ऐसा कार्य नहीं किया। जो पातिमोक्ख के नियमों के विरूद्ध हो। इस प्रकार, भिक्षुणियों के प्रव्रजित जीवन को सरस बनाने में उपोसध पर्व की सवल भूमिका थीं। साथ ही, संघ के इन धार्मिक पर्व में उनकी सहभागिता भी दृष्टगोचर होती है।

दृष्टिांत है कि बौद्ध स्थविरवादी परम्परा में 'वर्षावास' भी एक धार्मिक पर्व है। 'वस्सा' का अर्थ 'वर्षा ऋतु' है। बौद्ध धर्म में आषाढ़ की प्रतिपदा से लेकर अश्विन के पूर्णिमा तक के काल को 'वर्षा ऋतु' या 'वर्षाकाल' कहा जाता है। यहाँ 'काल' का अर्थ 'रहना' या 'वास' से है। इस प्रकार, वर्षाकाल में किसी एक स्थान में वास करने की जो विधा है, उसे 'वर्षावास' कहते हैं। इस संबंध में विशेषकर पाली साहित्य से ज्ञात होता है कि भगवान बुद्ध ने भिक्षुणियों को भी चारिका करने का विधान बनाया था। वस्तुतः वे सर्वदा परार्थ विचरण करती थी। उनकी चरिका वर्षाकाल में स्थगित हो जाती थी। वे वर्षाकाल के चार महीनों तक किसी एक स्थान में बैठकर साधना पूर्व अपना जीवन व्यतीत करती थी। इसी को वर्षाकाल कहा गया है। गौरतलव है कि महात्मा बुद्ध ने दो प्रकार के वर्षावास का विधान बनाया – यथा–पुरिमिका वर्षावास और पच्छिमिका वर्षावास।[20] हलांकि भिक्षुणीं अपनी सुविधानुसार पहला या दूसरा वर्षावास प्रारंभ करती थी। दोनों में से कोई एक का चयन भिक्षुणीं कर सकती थी। वर्षावास के आरंभ करने के उपरांत वे तीन महीनों तक उसी स्थान पर रहती थी।

ज्ञातव्य है कि भगवान बुद्ध ने भिक्षुणीं के लिए उपर्युक्त स्थान का चयन करने का भी विधान बनाया। जिससे साधक को वर्षावास के दौरान प्रव्रजित जीवन व्यतीत करने में असुविधा नहीं हो। उन्होंने कुछ विशेष परिस्थितियों में वर्षावास के दौरान अन्य स्थान का भ्रमण करने की अनुमति भी प्रदान की। पाली वाड़मय में वर्णित है कि जब कोई भिक्षुणीं संघ के लिए विहार, गृह, परिवेण, कोठरी, उपस्थानशाला, अग्निशाला का निर्माण करवावे तथा दूत भेजे की भिक्षुणीं यहाँ आवे और उन्हें धर्मोपदेश करे।[21] इसके अलावे, भगवान बुद्ध ने भिक्षुणीं के रूग्न होने, उच्चाट होने, संशय होने, बीमार होने अथवा माता–पिता के बीमार होने की स्थिति में वर्षावास में भी वे एक सप्ताह के लिए वर्षावास के नियम का परित्याग कर सकती हैं,[22] का विधान बनाया था।

परंतु तथागत बुद्ध ने नियम बनाया कि उसे सप्ताह पूर्ण होता ही उसे लौट आना चाहिए।[23] यहाँ दृष्टांत है कि *महावग्ग पिटक* में हिंसक जन्तुओं द्वारा उपद्रव, विषधर सर्पथा, बिच्छु द्वारा उपद्रव, अग्निदाह द्वारा उपद्रव, बाढ़, प्रतिकूल एवं विघनकारी भोजन द्वारा उपद्रव, दुष्ट स्त्रियाँ, पण्डकों राजा, चोर द्वारा उपद्रव एवं संघ भेद होने की आशंका इत्यादि की परिस्थितियों में वर्षावास नियम भंग हो जाने की चिंता न कर, स्थान का परित्याग करना चाहिए।[24] यहाँ पर भगवान बुद्ध ने साधक को व्रज (गाय के झुण्ड) एवं नावों से व्यापार करने वाले लोगों के साथ भी वर्षावास की अनुमति दी थी। संभवतः यह नियम केवल भिक्षु के लिए बनाये गये थे। ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है। क्योंकि गाय के झुण्ड वाहकों और नावों के व्यापारी पुरूष होते थे। इसलिए संभवतः भिक्षु ही साथ में रह कर वर्षावास कर सकते थे।

वस्तुतः वर्षाकाल में भिक्षुणियों को किसी एक स्थान में रहकर मूलतः अपनी साधना को सघन बनाने की बात थी। भगवान बुद्ध ने विधान बनाया कि इस अवधि में भिक्षुणीं के पास यदि कोई प्रव्रजित होने की आग्रह करे तो उसे प्रव्रजित अवश्य करें।[25] वह अपने चित्त को अधिक से अधिक ध्यान भावना में ही लगावें। वह अपने धवल तथा उदात्त चरित्र से उस क्षेत्र को धर्ममय बनावें। अपनी तरल विप्पसना को परिपक्व करें। उनका आचरण सम्यक् युक्त हो। अपनी गति, आकृति, अभिवाचन को संयमित रखें और उनसे लोगों के मानस पर संयमित जीवन का अमिट प्रभाव छोड़ें।[26] ये नियम नारी एवं पुरुष दोनों भिक्षु–भिक्षुणी के लिए सामान्य रूप से कथित था। ऐसे ही धवल उद्देश्यों से वर्षावास का विधान किया गया था। दृष्टांत है कि ये भिक्षुणियाँ बुद्ध के द्वारा बनाये गए वर्षावास के नियमों का पालन करती थीं, जो धार्मिक पर्व में उनकी सजग सहभागिता को दर्शाता है।

यहाँ गौरतलव है कि वर्षावास के परिसमाप्त होने के उपरान्त 'पवारणा' पर्व का आयोजन होता था। संभवतः पवारणा का आयोजन वर्षावास के दौरान भिक्षुणियों की साधना जीवन का मूल्यांकन के लिए की जाती थी। ज्ञात हो कि 'पवारणा' का आयोजन अश्विन पूर्णिमा या कार्त्तिक पूर्णिमा को की जाती थी तथा दूसरे दिन चारिका का पुनः प्रारंभ हो जाता था।[27] 'पवारणा' शब्द का अर्थ 'पूर्ण होना' या 'करना', 'परिसमाप्त करना', 'मर्जन करना', 'अवलोकन

करना' इत्यादि होता है परंतु जो अधिकतम सार्थक तथा प्राविधिक है वह है 'मूल्यांकन करना'।

जाहिर है कि भगवान बुद्ध ने भिक्षुणीं के लिए भी 'पवारणा' विधि बनाया था। जिससे भिक्षुणियों की वर्षावास के दौरान किए गये साधना का मूल्यांकन की जाती थीं। जिसमें भिक्षुणियाँ एक–दूसरे के दोषों को बतलाती थी। इसी विधि को पवारणा कही जाती थी।[28] हलांकि उन्होंने भिक्षुणीं के लिए पवारणा विधि का आयोजन करने के लिए कोई विशेष स्थान की खोज की आवश्यकता नहीं बतलायी थी।[29]

इसके अलावा, उन्होंने परिस्थिति के अनुसार पवारणा में भिक्षुणीं की संख्या निर्धारित करने की बात कही थीं[30] तथा पवारणा को संक्षेप में, सम्पन्न करने की भी व्यवस्था की थी।[31] पवारणा के साथ उक्त तिथि को उपासकों द्वारा भिक्षुणियों को दान देने (विशेष प्रकार का चीवर) की बात कही गयी थीं। भिक्षुणियों को इस बात के लिए प्रसन्नता होती थी कि उसके द्वारा परिशुद्ध जीवन यापन के क्रम में इस दान की प्राप्ति हुई।[32] वस्तुतः इस कठिन चीवर को धारण कर वह पूर्ण तत्परता के साथ चारिका के लिए अग्रसर होती थी और उसके मन में उत्साह रहती थी कि उसे कठिन चीवर की प्राप्ति हुई एवं उसी उत्साह के साथ वह आगे भी अपने जीवन को उसी रूप में संचालित करती रहेगी और मानव–समुदाय में भगवान बुद्ध के साम्यक् उपदेश को फैलाऐगीं। फलतः जिससे लोगों को उच्च नैतिक आदर्शों का भान हो सके।

वस्तुतः महात्मा बुद्ध द्वारा बनाये गये अपने सघ में स्त्रियों के प्रवेश के नियम अनिवार्य रूप से उचित प्रतित होता है जो उनके दूरदर्शिता का परिचायक है। उन्होंने परिस्थिति, देश एवं काल के विभिन्न अंगों पर विचार किया और नियम बनाया कि भिक्षुणीं के लिए ऐसा करना विहित नहीं है। यह भी सत्य है कि छब्बग्गिया भिक्षुणियों द्वारा नियमों का उल्लंघन भी होता रहा। किन्तु उससे संघ के ब्रह्मवर्य जीवन के संचालन में बहुत अधिक समय तक बाधा नहीं आई। तथागत बुद्ध ने तुरंत उन विकृतियों को दूर करने के लिए वैसा नियम बना दिया। वस्तुतः उनके देख–रेख में भिक्षुणीं जीवन अर्थात् भिक्षुणीं संघ का साम्यक् संचालन होता रहा। वहाँ एक ही लक्ष्य था कि अपने चित को क्रमशः परिशुद्ध करना और निर्वाण की प्राप्ति करना। इसके लिए बौद्ध संघ की भिक्षुणियाँ सदैव अध्ययनरत रहती थीं एवं साधनापूर्ण जीवन व्यतीत करती थीं।

मालूम हो कि इस समय कई भिक्षुणियाँ काफी विदूषी भी हुई। उनको बौद्धकालीन समाज में आदर एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था। कई भिक्षुणियों ने अनेकों ग्रंथ की भी रचना की है।

इस प्रकार, ऊपर वर्णित तथ्यों का परीक्षणोप्रांत स्पष्ट होता है कि बौद्ध संघ के धार्मिक पर्वो में भिक्षुणीं की महत्वपूर्ण सहभागिता थी। वे धार्मिक पर्वों के माध्यम से अपना प्रव्रजित जीवन व्यतीत तो करती ही थीं। साथ ही, इन पर्वों के अवसर पर वे अपना मनोरंजन भी कर लेती थी। जिससे उनके जीवन में मनोरंजन एवं रसरता दोनों आती थी। अंततः भगवान बुद्ध द्वारा संघ के लिए बनाये गये धार्मिक पर्व भिक्षुणियों के चारित्रिक परिशुद्ध के साथ–साथ साम्यक् मनोरंजन का माध्यम भी था।

संदर्भ

1. *विनय पिटक,* (हिन्दी अनुवाद), राहुल सांकृत्यायन, सारनाथ, 1935, पृ. 522–525.
2. *वही,* पृ. 522–525.
3. *वही,* पृ. 58.
4. *थेरीगाथा,* (देवनगरी संस्करण), नालंदा, 1959, पृ. 59.
5. *विनय पिटक,* उपरोक्त, पृ. 519.
6. *चुल्लवग,* 10.1.6., (अनुवाद) जे.पी. जेक्युिर, लन्दन, 1922, पृ. .159;*अगुत्तर निकाय,* (अनुवाद), नालंदा देवनगरी संस्करण, खण्ड–4, पृ. 275.
7. *संयुक्त निकाय,* सं.टी, फ्रिवर एण्ड मिसेज आर. डेविडस, जिल्द–1 लंदन, 1984–1904, पृ. 78; वासुदेव शरण अग्रवाल,*पाणिनिकालीन भारतवर्ष,* लखनऊ, 1953, पृ. 26.
8. *चुल्लवग्ग,* उपरोक्त, पृ. 195, 234.
9. *विनय पिटक,* अनुवाद, एच. ओल्डेनवर्ग, पी.टी.एस. लंदन, 1870–83, पृ. 419.
10. *खुद्दक निकाय,* नालंदा देवनागरी संस्करण, जिल्द–3, भाग–2, 1959, पृ.61.
11. *जातक,* सम्पादित और अनुवादित, ई.बी. कावेल, भाग–6, कैम्ब्रिज, 1895–1907, पृ. 303.
12. *वही,* भाग–1, पृ. 460.
13. *चुल्लवग्ग,* उपरोक्त, पृ. 195, 234; मदन मोहन सिंह, *बुद्धकालीन समाज और धर्म,* प्रथम संस्करण, पटना, 1972, पृ. 182.
14. *जातक,* उपरोक्त, भाग–6, पृ. 652.
15. *अंगुत्तर निकाय,* सम्पादित, आर. मोरिस और ई. हार्दी, लंदन, 1900, जिल्द–2, पृ. 901; श्री हवलदार त्रिपाठी, *बौद्ध धर्म एवं बिहार,* प्रथम संस्करण, पटना, 1962, पृ.20.

16. *विनय पिटक,* अनुवाद, एच. ओल्डेनवर्ग, उपरोक्त, पृ. 419; बी.सी.ला, *ए हिस्ट्री ऑफ पाली लिटरेचर,* भाग–2, लन्दन, 1933, पृ. 238.
17. *चुल्लवग्ग,* उपरोक्त, पृ. 196.
18. *अंगुत्तर निकाय,* उपरोक्त, जिल्द–1, पृ. 134.
19. *चुल्लवग्ग,* उपरोक्त, पृ. 373.
20. *वही,* पृ. 393–395; मदन मोहन सिंह, *उपरोक्त,* पृ. 136.
21. *वही,* पृ. 398–400.
22. *वही,* पृ. 396.
23. *वही,* पृ. 396; रिज डेविइस, *बुद्धिस्ट इंडिया,* फर्स्ट एडीसन, दिल्ली, 1971, पृ.187.
24. *महावग्ग,* सम्पादित एवं अनुवादित, सी.पी.एस. पेरापियसा, लंदन, 1956–58, पृ.114.
25. *वही,* पृ. 105; ए.एस. ब्रडले, *द बुद्धिस्टर रिमेन्स ऑफ बिहार,* प्रथम संस्करण, 1872, पृ. 367.
26. *वही,* पृ. 106.
27. *वही,* पृ. 119–120.
28. *विनय पिटक,* अनुवाद, एच. ओल्डेनवर्ग, उपरोक्त, पृ. 39.
29. *वही,* पृ. 40; वी.एन. पुरी, इंडिया इन टाइम ऑफ पतंजली, बम्बई, 1957, पृ.172.
30. *वही,* पृ. 259; डे.एस.के., *द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया,* भाग–2, कलकत्ता, 1962, पृ. 319.
31. *महावग्ग,* उपरोक्त, पृ. 143; पिक आर, *द सोशल आरगेनाइजेशन इन द नाथ ईस्ट इंडिया इन बुद्धाज टाइम,* वाराणसी, 1972, पृ. 236.
32. *वही,* पृ. 145; डी.एन.झा, *प्राचीन भारत,* दिल्ली 1977, पृ. 48

Copyright © 2025 Siri Research Foundation. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution License (CC BY-NC-ND 4.0).